डॉ0 अम्बेडकर और उनके शैक्षिक विचार

डॉ0 कल्पना यादव,

सह–आचार्य,

खुन खुन जी गर्ल्स पी0 जी0 कॉलेज, लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 अमबेडकर के विद्यार्थी जीवन का आंकलन करने के पश्चात शिक्षा के महत्व को अनुभूत किया जा सकता है अगर ज्ञान रुपी प्रकाश की जीवन में आवश्यकता न होती तो डॉ0 अम्बेडकर इस शिक्षा जैसी तुच्छ चीज के लिये क्यों समाज से संघर्ष करते, उपेक्षा को सहन करते, लोगों की दुतकार को सुनते, पल पल ताने, उलाहनें से भरे जीवन को व्यतीत करते क्योंकि वे जानते थे कि एक मात्र शिक्षा ही है जो मुझे इस दल–दल से निकालकर समान अधिकार दिलाने में सहायक होगी और समान स्थान और स्तर के योग्य बनायेगी और मैं अपने जीवन के साथ – साथ अपने जैसे लोगों का भी जीवन सुधारने में समर्थ होऊँगा। इसीलिये उन्होंने उस समय लोगों के द्वारा दी जा रही पीर को पुरस्कार समझकर प्राप्त किया और निरन्तर अपने लक्षित लक्ष्य पर चलते हुये सर्वाधिक उपाधियाँ प्राप्त की तथा शिक्षा के सारभूत महत्व को शब्दायित किया। संविधान निर्माता होने के साथ–साथ वे कुशल प्रशासक, शिक्षाविद, शिक्षा के प्रचारक और प्रसारक भी थे।

शिक्षा विहीन लोगों का समाज विकास करेगा तो ये बात उसी प्रकार से है जैसे बिना पहियों की गाड़ी में बैठकर व्यक्ति ये सोचे कि वह अपने गन्तव्य पर पहुँच जायेगा। व्यक्ति, परिवार, कुअुम्ब, ब्लॉक, तहसील, जिला मण्डल, प्रदेश, देश, विदेश सभी के लिये शिक्षा अत्यधिक आवश्यक है। ये प्रत्येक जीवन को सुखद मंत्र प्रदान करने में समर्थ है। इसलिये इसके महत्व को जानना और पहचानना आवश्यक है। इसीलिये डॉ0 अम्बेडकर ने मूलमन्त्र दिया ''शिक्षित करो, संगठित करो, संघर्ष करो'' उनका मानना था कि यह शिक्षा है जो व्यक्ति को विवेक की दृष्टि देती है, उचित अनुचित का बोध कराती है उसके चारित्रिक गुणों का विकारा करती है।

उनके मूलमन्त्र का पहला मन्त्र ''शिक्षित करो'', ''विद्या विहीन गुरु'' विद्या शब्द की चीर–फाड़ से भी यही पुष्टि होती है कि उसकी धार इतनी तेज है कि वह अज्ञान के काले राक्षस को काटने में सक्षम है। विद् या त्र विद्या यानी विद् का अर्थ जानना ज्ञान और या का अर्थ है जाना, पहुँचना अर्थात ज्ञान को पाना। विद्ययाऽमृतमश्नुते – कि विद्या, शिक्षा से अमृत पिया जा सकता है। अमरत्व प्राप्त हो जाता है। उनकी ज्ञान की प्यास शिक्षा के समुन्द्रों को सुखाने के लिये समर्थ थी, उनकी प्यास का अनुमान उनके द्वारा स्थापित उन महाविद्यालयों से लगाया जा सकता है। जो आज आकाश दीपों की तरह जगमगा रहे हैं। शिक्षा और शिक्षक के सम्बन्ध को प्रदर्शित करने वाली सूक्ति डॉ0 अम्बेडकर पर पूर्णतयः चरितार्थ होती है –

आकारे रिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।

नैत्रवक्त विकारैश्च ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनरुम।।

अर्थात आकार संकेतों एवं गति, चेष्टा और भाषण तथा नेत्र एवं मुख भंगिमाओं से मनुष्य का आंतरिक मन पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है।

स्त्री शुद्रो नाऽधीयेताम् इति यह उक्ति सोचने के लिये विवश करती है कि जब शिक्षित पशु– पक्षियों से मनुष्यों के समान कार्य कराये जा सकते हैं तब मनुष्य को वर्ग भेद के आधार पर शिक्षा से वंचित करना क्या न्याय संगत था, ऐसा क्यों हुआ, इससे किन लोगों को लाभ था वे कौन

लोग थे, जो शिक्षा के प्रकाश से तनाव समाज के दो तिहाई भाग को वंचित कर मनुष्येत्तर जीवनयापन व्यतीत करने के लिये वाध्य कर रहे थे। जब प्रकृति सभी को समान रुप से दिव्य वस्तुयें प्रदान करती है तब शिक्षा को देने में भेदभाव क्यों ?

डॉ0 अम्बेडकर शिक्षा के महत्व को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही समझ गये थे तभी उन्होंने सर्वहारा समाज के समक्ष तीन सूत्र रखे। शिक्षित करो, संगइित करो और संघर्ष करो। इन सूत्रों को जिस क्रम में रखा गया वह मात्र संयोग नही है अपितु उनकी विवेक, तर्कशक्ति का बोधक बोध कराता है। अर्थात पहले शिक्षित करो उसके बाद संगठित करो और संगठन की शक्ति को पहचान कर सुखी और श्रेष्ठ जीवन के लिये संघर्ष करो। शिक्षा ही उस विवेक को जन्म देती है जो सत्य के दर्शन कराता है, मंगलकारी होता है तथा सौन्दर्यबोध को जन्म देता है। शिक्षा–भारती के तीन लोक, उन्नायक पुत्र सत्य, शिव, सुन्दर हैं। अतः स्पष्ट है कि शिक्षित करो सूत्र के अभाव में समाज, संरचना, सभ्यता और संस्कृति का प्रादुर्भाव होना ही दिवा स्वप्न है।

आज भी तथाकथित परिगणित वर्गों में दोनों रोशनियों का अभाव है। न ही बिजली का प्रकाश उनके घरों को रोशन करने को तैयार है और न ही शिक्षा का प्रकाश उनके जीवन को आलोकित करने को तैयार है। डॉ0 अम्बेडकर शिक्षित करो सूत्र को व्यावहारिक तल पर उतारने के शक्ति पुंज थे। वे स्वयं शिक्षित करो के साकार सजीव तथा सशक्त आदर्श स्तम्भ पुष्प थे। आचरण के धनी और व्यावहारिक चिन्तक थे। वे उपदेशक नहीं अन्वेषक प्रक्षेपक थे मगर उपदेश कुशल बहुतेरों से कोसों दूर थे। यही कारण है कि वे आधारहीन आलोचना की परिधि से बाहर है।

मानव मानव को अछूत माने, समझे और कहे, यह शिक्षा की अधकचरी और अभाव की ही कहानी तो है। यदि अछूत कहने वाला सही अर्थों में शिक्षित होता तो वह अपने ही हमशक्ल को अछूत कहता मानता ही नहीं बल्कि उसे शिक्षित कर अपने जैसा बनाता और मानता। पाखण्ड और धर्म में कितना अन्तर है शिक्षित करो में अपार शक्ति सूत्र छिपा है जिसे प्रत्यक्ष करने से ही मानवीय मूल्यों की स्थापना सम्भव है। यही शिक्षा नीति का मूल है। शिक्षा एक तरह से दूध पदार्थ है जो सभी के लिये हितकारी और स्वास्थ्यवर्धक है।

जब डॉ0 अम्बेडकर शिक्षित करो की उद्घोषण कर रहे थे तब उनका तात्पर्य ऐसी शिक्षा– नीति या प्रणाली से था जो मनुष्य समाज को दुराचारों, कुप्रथाओं, कुविचारों और कुसंस्कारों को पहचानने और समझने के बोध से समर्थ कर सकें। नैतिक मूल्यों सरलता, सहजता, सजगता और सेवा, त्याग शक्ति–शौर्य तथा दया, करुणा मैत्री और स्वच्छता, स्वस्थता सफाई आदि को आत्मसात् कर मनुष्य को मनुष्यत्व के मार्ग पर अग्रसर कर सकें।

स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, शोषण, उत्पीडन, भय, भ्रम, भटकान, आतंकवाद और उग्रवाद आदि मनुष्य और मनुष्यता को निगलने वाले छोटे–बडे अजगर है। जिन्हें शिक्षा के तीर से ही नष्ट किया जा सकता है और सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है। अतः आवश्यक है कि मनुष्यों को दी जाने वाली शिक्षा में एकरुपता हो और उसके द्वारा समता और बंधुत्वता के अंकुर अंकुरित हों। राष्ट्र भक्ति का संगीत उदित हों और सेवा त्याग का संकल्प जन्मित हो। क्योंकि शिक्षा आत्मज्ञान और भौतिकज्ञान का आधार है। शिक्षा ही वह आधार है जो जीवन को अपूर्णता से सुरक्षित करके पूर्णता की ओर अग्रसारित करती है। मनुष्य को हर क्षेत्र में अच्छे–बुरे से परिचित कराकर सावधान रखती है और दिशा बोध के साथ युगबोध का आभास कराती है अतः जीवन के प्रारम्भिक क्षणों से ही

शिक्षा अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देती है और जीवनांत तक सक्रिय रहती है। तभी तो आचार्य विष्णु गुप्त को कहना पड़ा –

अजर–अमरवत् प्राज्ञो विद्मामर्थे च चिंतयेत्।

गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत म।

अर्थात विद्या शिक्षा को प्राप्त करने के लिये बुद्धिमान मनुष्य स्वयं को सदा युवक और न मरने वाला समझे। यानी बुढ़ापा आएगा और न कभी मृत्यु होगी, अतः शिक्षा ग्रहण करते रहो।

विद्मा नाम नरस्य रुपमाधिकं, रुपमाधिकं,
विद्मानाम यषः करीच अर्थकारीः

यानी विद्या से अलंकृत कुरुप व्यक्ति भी स्वरुपवान सुन्दर मनुष्य है। विद्या यश, धन–दौलत प्रदान करने वाली है। ये सर्वहितकारी, मंगलमयी है। यह मनुष्य, समाज, राष्ट्र को उदार चित्त बनाती है।

अछूत कौन और कैसे में यज्ञ स्तम्भ यानी यूप की चर्चा करते हुये पवित्र विद्या का उल्लेख किया है कि विद्या मनुष्य और समाज को सौन्दर्य प्रदान करती है तथा विद्या पवित्र तत्व है जिसके ग्रहण करने से मनुष्य, समाज में पवित्र भावों का उदय होता है। नीतिकार ने कहा है, बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् अर्थात् बुद्धि वाले ही बलशाली होते हैं। बुद्धिहीनों के पास बल कहाँ। मनुष्य को अपनी शक्ति, बल निरर्थक कामों, बातों पर नहीं गवानी चाहिए यह बोध भी शिक्षा द्वारा ही उपलब्ध होता है शिक्षाहीन तो कर्तव्य–अकर्तव्य बोध से भी खाली होता है।

शिक्षा के स्रोत

1. प्राणी, माता–पिता और परिवारजन
2. समाज
3. गुरुजन या श्रेष्ठजन यद् वद् आचरति श्रेष्ठजनः तत् करेाति इतरो जनः।
4. विराट प्रकृति जो हमें स्वयं भी समय–समय पर शिक्षा देती है और उसके भिन्न– भिन्न रुपों से हम शिक्षा लेते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर उपर्युक्त सभी स्रोतों से न केवल परिचित थे अपितु उक्त स्रोतों क`दोहन अथवा अवगाहन के द्वारा समग्र ज्ञान मंडित होकर रेष्ठजन आभावान बनें। विश्व मानव समाज रंग, भेद, राष्ट्र, धर्म, मत के भेद से मुक्त मानव समाज बनना चाहिए। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जा सकें कि मनुष्य–मनुष्य के अपमान, तिरस्कार तथा उत्पीड़न को अनैतिक, अव्यावहारिक तथा अहितकारी समझकर सहज, सरल मनुष्य बन सकें। सभ्य समाज का आधार निर्मित कर सकें। समरुप, रुपविहीन संस्कृति जन्म ले सकें।

डॉ0 अम्बेडकर इसी तरह की शिक्षा पद्धति के पक्षधर थे जो सबको सहजता से सुलभ हो और छल, कपट को जन्म न दें। मनुष्य–मनुष्य के मध्य अन्दर घ ृणा, द्वेष, अलगाव तथा आतंक को समाप्त करे, आपस में मतभेद पैदा न होने दें।

उनका आशय यह था कि हम भारतीयों को ऐसी शिक्षा की जरुरत है जो यह बोध दे कि धर्म जल की तरह स्वच्छ एवं निर्मल, शीतल है जिसका कोई रंग नहीं, जिसमें मनुष्यता को जलाने वाली तपन का अभाव हैं, जो प्राणी मात्र की प्यास को शान्त करता है। आत्म–तृप्ति देता है। यदि हम निर्मल, शीतल जल में प्रदूषण उत्पन्न करते है तो वह अपेय हो जाता है। स्नान के योग्य भी नहीं रहता, पीना तो सम्भव ही नहीं है।

वह कैसा धर्म जो एक वगर्ग या मनुष्य की प्यास बुझाने के लिये दूसरे वर्ग या मनुष्य का रक्त पीकर तृप्त होता है मानवीय गुणों को नकारता है, दानवता फैलाता है। समता की पुष्टि और विषमता का उच्छेद ही शिक्षा का शाश्वत लक्ष्य है। इस तरह बोध को जागृत करना ही

शिक्षा की परिणति है जो ऐसा करने में समर्थ नहीं, वह शिक्षा–कुशिक्षा है। इससे तो अशिक्षित रहना ही ठीक है। मनुष्य पढ़ा–लिखा जानवर तो नहीं कहलायेगा।

शिक्षा का स्वरुप इससे अच्छा हो सकता है इसमें सन्देह है अन्ततः सन्देहों को नष्ट करना ही शिक्षा का सच्चा स्वरुप है। उसी का जन्म होना चाहिए, ताकि युगानुरुप मनुष्य, समाज बन सकें। निष्कलंक, निष्कपट व्यवस्था का निर्माण हो सकें।

शिक्षा के महत्व को बताते हुए सन् 1930–31 में लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेस में डॉ0 अम्बेडकर ने कहा था। ये लोग हमारी कठिनाईयों दूर करने में बाधक हैं और हमें अपनी प्रबल अभिलाषाओं की ही और से विमुख एवं उदासीन नहीं किए हैं वरन् हमें शिक्षा से भी वंचित रखते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर सर्वहारा वर्ग की अशिक्षा से बहुत चिन्तित थे और वे एक ऐसी शिक्षा, पद्धति बनाने के पक्ष में थे जो सिद्धान्ततः सब भारतीयों के लिए उपयोगी तथा समता और एकता के निर्माण में सहायक हो और समान अवसर जुटाने में समर्थ हो।

नीति, नियम तथा संविधान–कानून का निर्माण भी तो सुशिक्षित होने पर ही सम्भव होता है। नैतिकता, मनुष्यता का जन्म तथा विकास भी शिक्षा पर निर्भर करता है। सामाजिकता और आर्थिक विकास एवं व्यापार बुद्धि भी शिक्षा की ही देन होती है। सभ्यताः, संसकृति, शासनतन्त्र का उदय और सुचारुता भी शिक्षा द्वारा ही सम्भावित होती है। ये सब बातें शिक्षा की अनिवार्यता को अनिवार्य करार देती है, इसलिये डॉ0 अम्बेडकर द्वारा शिक्षा पर जोर दिया जाना स्वाभाविक ही था। शिक्षा कर्तव्य और अधिकार तथा आत्म–सम्मानी होने के लिए आवश्यक हैं।

डॉ0 अम्बेडकर ने महिलाओं की एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि – ''तुम अपने बच्चों को स्कूल क्यों नहीं भेजती हो, जहाँ वे शिक्षा ग्रहण करें। एक अन्य सभा में महिलाओं को सम्बोधित करते हुए उनके सतीत्व की बात कही कि तुम अपने शरीर को पूरा क्यों नहीं ढकती हो और अपने सतीत्व की रक्षा करो तभी तुम सम्मानजनक जीवन जी पाओगी, अपने जीवन में बदलाव लाओ।''

अक्टूबर 1951 में केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देकर जब डॉ0 अम्बेडकर आर्य समाज की एक सभा को सम्बोधित करने गए तो उन्होंने कहा कि –''मुझे पढ़ाने का पेशा अत्यन्त प्रिय है। मुझे विद्यार्थी भी बहुत अच्छे लगते हैं। मुझे उसे वरतना पड़ा है। मैंने उनके लिए बहुत व्याख्यान दिए हैं, लेकिन मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र देने के बाद यह आज पहला अक्सर है, जब मैं विद्यार्थियों के सम्मुख बोल रहा हूँ। देश का भविष्य प्रायः विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। विद्यार्थी देश का समझदार वर्ग होता है। विद्यार्थी जनमत को प्रभावित कर सकते है। इसलिए आप लोगों और प्रतिनिधि सभा को सम्बोधित करके कुछ कहना मेरे लिए आनन्द का विषय है। उपयुक्त शब्द बाबा साहब ने दयानन्द एंग्लोवैदिक कॉलेज, जालंधर, पंजाब में कॉलेज के प्रिंसिपल के आमन्त्रण पर वहाँ के छात्रों को कहे थे जो उनके शिक्षा, प्रेम और उसके महत्व को प्रतिपादित करते है। बाबा साहब सर्वहारा वर्ग के उद्धार के लिये राजनीति में गए थे। स्वभाव और आचरण तथा ज्ञान से वे महान शिक्षक थे। डॉ0 अम्बेडकर पाँच साल तक राजकीय लॉ कॉलेज मुम्बई में प्राचार्य रहे। उससे पूर्व वे प्रोफेसर भी रहे और कुरीतियों को काटने का काम करते रहे।

स्वदेश पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।

वे एक मीनार थे लेकिन कुतुब की मीनार की तरह निर्जीव और मात्र मनोरंजक नही अपितु

मानवता, समता, एकता, प्रतिभा तथा आचरण की ऊँची मीनार थे।

यदि शिक्षा के प्रकाश को जन–जन तथा हर मन–मस्तिष्क तक जाने से रोकने के घिनौने हथकंडे अपनाए गए तो मनुष्य एवं मनुष्यता की नियति का नाम विनाश होगा। मनुष्य, परिवार और समाज तथा शासनतन्त्र, चाहे वह राजतन्त्र हो या एकतन्त्र अथवा लोकतन्त्र और सभ्यता, संस्कृति सब शिक्षा के खेल हैं। खिलौने हैं। शिक्षा नही तो असामाजिकता, अराजकता और असभ्यता, असंस्कार के अतिरिक्त और का होना संभव ही नहीं। फिर रोशनी तो रोशनी है यानी शिक्षा तो शिक्षा है। उजाले का लाभ सबको पहुॅचाना चाहिए। चोरी, व्याभिचार आदि बीमारियों का निदान शिक्षा है। शिक्षा वह औषधि है जो राष्ट्रीय तथा सामाजिक स्तर की समस्त कुरीतियों का इलाज कर सकती है।

सच तो यह है कि यदि संविधान के निर्माण की तरह शिक्षा नीति का निर्माण उन पर छोड़ा गया होता तो शिक्षा की वह दुर्गति न होती जो आज हमें नजर आ रही है और भारतीय समाज ऐसी अधोगति का शिकार न बनता, भ्रष्ट न होता और विषमता की पुरानी दीवारों के रहते नई दीवारें न खड़ी होती। पंथ, मजहब अथवा तथाकथित धर्म, मानवता और राष्ट्रीयता के सिर सवार होकर स्वार्थ के हथौड़े की चोट मारकर उन्हें लहुलुहान न करता।

हमारी शिक्षा हमें मनुष्य और भारतीय नहीं बना सकीं। असल में सोचा यह जाना चाहिए कि छात्रों को पढ़ाया क्या जाना चाहिए जिससे सार्वभौम सत्ता सम्पन्न भारत को महान राष्ट्र होने का गौरव मिल सकें। यदि महान त्याग और सेवा तथा ऊँचे आदर्श लक्ष्य की उपलब्धि का भार हमारी शिक्षा नहीं उठा पा रही अथवा इसमें असमर्थ है तो ऐसी शिक्षा को रद्दी कागज की तरह बेचना ही हितकर होगा। उसी तरह जैसे घर से कूड़ा–करकट को निकाल कर कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाता है।

ऐसी शिक्षा जो मनुष्य को निर्भय बनाए, एकता सिखाए और अपने जन्मजात अधिकारों का बोध कराए तथा अपनी अस्मिता, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, युद्ध लड़ना भी सिखाए और मार्ग प्रशस्त करें। वहीं वास्तविक शिक्षा है।

शिक्षा ही वह केन्द्र–बिन्दु है शरीर में नाभि–केन्द्र की तरह जो विराट समाज के हर वर्ग, इकाई को आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक, आध्यात्मिक रुप से सम्पन्न बनाना है, रस पहुॅचाता हैं पुष्ट बनाता है। एकता का उदय होता है।

1930 में गोलमेज कांग्रेस में कहा – सिर्फ लिखाई–पढ़ाई का नाम ही शिक्षा नहीं। आचरण की शिक्षा, व्यवहार की शिक्षा तथा संगठन बनाने और संघर्ष करने की शिक्षा, लक्ष्य, उद्देश्य को पाने की शिक्षा, पाकर उसे सुरक्षित रखने की शिक्षा। अनुभव, अनुभूति तथा अभिव्यक्ति ये सब शिक्षा के ही अंग है। जो जीवन को सार्थक, सफल बनाने मे मददगार सिद्ध होते हैं। कार्य की सफलता के चिन्ह होते हैं। प्रगति, विकास के साधन होते है। इस बात को डॉ0 अम्बेडकर ने बीस–तीस वर्ष की उम्र में ही जान लिया था। परिपक्व समाज उदार होता है और परिपक्वता उसके आचरण, व्यवहार से जानी जाती है तथा आचरण एवं व्यवहार का अच्छा होना विवेक पर निर्भर करता है और विवेक का जन्म शिक्षा, अनुभव एवं अनुमान, प्रत्यक्ष यानी साक्षात्कार से होता है।

शिक्षा क्रान्ति का पर्याय है। भ्रम, कपट, छल के लिए चमकदार, तेज धारवाली छुरी है। रुढियों, अंधविश्वासों को नष्ट करने के लिए सशक्त कुल्हाड़ी है। यदि शिक्षा यह सब नही कर सकती तो ऐसी शिक्षा मात्र शव है। उसे दफनाना या जलाना ही उचित कार्य हो सकता है। प्रथम तो शिक्षा जैसी होनी चाहिए वह वैसी नही है फिर

शिक्षक और समाज भी अपने दायित्वों का निर्वहन पूर्ण निष्ठा से नहीं कर रहे हैं। शिक्षा प्रमाण–पत्र तक ही सीमित रह गयी है उसके विकासशील गुण समाप्त हो गए हैं। आत्मनिर्भरता, उदात्त भावना, उच्च विचार और विनम्रता आदि गुण मानों बीते समय की कहानी बन गए हैं। शासनतन्त्र चिल्ला–चिल्लाकर 21वीं शताब्दी की बात कर रहा हो लेकिन वास्तविकता पर पर्दा नहीं डाल सकता, जन–मानस को गुमराह कर सकती है।

''संगठित रहो'', संगठन बनाओ अपनी बटी हुई शक्ति को ज्वालामुखी में बदलो और फूंक दो उन विषमता की झाड़ियों और जंगलों को जो मानव के प्रगति–विकास पथ नर उगे अड़े खड़े हैं। मनुष्य को अपना हक नहहीं छोडना चाहिए, लेकिन अपने साथी का हक भी नही हड़पना चाहिए। यही शिक्षा का उद्देश्य एवं लक्ष्य है। डॉ0 अम्बेडकर इस अनर्थ को मिटाने और सही अर्थ को बताने के काम में जीवन पर्यन्त जुटें रहे। यदि हमारी शिक्षा ऐसे व्यक्तियों को जनम दें सकें, निर्मित कर पाये तो न मनुष्य टूट सकता है, न मनुष्यता विखन्डित हो सकती है। तब ही समता–धर्म का उदय सम्भव होगा। तो क्या ऐसे प्रयास किए गए यदि नहीं तो क्यों ? ऐसी वे कौन सी विषम परिस्थितियाँ थीं ! जिन्हें हटा पाने में तन्त्र असमर्थ था। शायद एकमात्र स्वार्थ, सत्ता की भूख, सम्पत्ति के ढेर, पहाड़ खड़े करने की अंधी–घिनौनी लिप्सा।

जिस देश में ''गुलों से शिकवा, यारों से मुहब्बत'' वाली शिक्षा का पढ़ना–पढ़ाना रस्मो रिवाज बन गया हो, चलन हो गया हो, वहाँ चमन के गुलों को नोचने से पैदा हुए गमों के मारों को कौन पूछे ? क्यों पूछे ? उनकी बना से।

ईद मनाकर और गंगा स्नान से पाक–पवित्र हुई शिक्षा क्या हमें राष्ट्र एकता, मनुष्य समात की पावन शिक्षा दे पाएगी ? सच्चाई यह भी है कि मौजूदा शिक्षा न रोचक है, न ही उत्साहवर्धक और न ज्ञान–विज्ञान दृष्टिपरक। वह रेत के कणों की तरह है जिससे जैसे– तैसे तेल निकालने की निरर्थक कोशिश की जा रही है।

यदि आज मनीषी और पूर्ण मानव डॉ0 अम्बेडकर हमारे मध्य हेाते तो वे ऐसी शिक्षा पर लानत की बौछार करते और शासकों, पाखण्ड रचने वाले ठेकेदारों से कहते कि तुम लोग राष्ट्र और जनता को नष्ट करने पर क्यों तुले हो ? कुछ तो शर्म करो। यदि स्वयं सुशिक्षित नही बन पाए तो भारत के लोगों को तो अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध करो, जिसे पाकर वे राष्ट्र एवं युग धर्म को समझते हुए, मनुष्यता को धर्म का समानार्थी समझ सकें।

शिक्षा सब को मिलनी चाहिए,

माता शत्रु' पिता बैरी, येन बालो न पठितः।

न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथाम।

हमारी सरकारी समझ बिना जड़ की आकाश वेल–शिक्षा का समारम्भ कर रही है, जो मनुष्य के दिमाग में आचरण–व्यवहार में नहीं पेड़ों के ऊपर फैलेगी। आकाश वेल की तरह शिक्षा की वेल अर्थात् आकाश वेली शिक्षा बिना मूल के फलने–फूलने वाली आजकल के शिक्षाशास्त्री खद्मोत सम जहं–तहं करत प्रकाश। बिना जड़ वाली आकाश–वेल को शिक्षा में महान क्रान्ति का पर्दापण कह रहे हैं आदमी ना सही पेड़–पौधे शिक्षा की क्रान्ति से पीलिया जायेंगे।

जब विभिन्न राष्ट्रवाद में बटे मनुष्यों के बीच समरस शिक्षा, भाईचारे की लहर का प्रसारण करेगी अर्थात् सारी बुराईयों की जननी अशिक्षा है तो समस्त अच्छाईयों की जननी भी शिक्षा है, जो बाहर–भीतर और चारों तरफ से उज्ज्वल है, जिसमें तिल के समतुल्य भी काला दाग नहीं हैं। जो निःशेषः जाड़यापहाः ? अर्थात् सम्पूर्ण, समस्त जड़ता, मूर्खता को नष्ट करने वाली शिक्षा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मोहन सिंह, 2006 डॉ0 अम्बेडकर व्यक्तित्य के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. सूर्य नारायण त्रिपाठी, 1996, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, जीवन–चरित्र पॉप्युलर प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. डी0 आर0 जाटव, 2004, डॉ0 अम्बेडकर एक प्रखर विद्रोही, एबीडी पब्लिशर्स, जयपुर।
4. ननकचंद सत्तू, 2004 डॉ0 अम्बेडकर जीवन के अंतिम कुछ वर्ष, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, 1982, खण्ड–2, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, मुम्बई।
6. डॉ0 बाबासाहेब अम्बेडकर रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, खण्ड 8, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, मुम्बई।
7. भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर, 2005, प्रकाशन प्रभाग, नई दिल्ली।
8. बाबासाहेब डॉ0 अम्बेडकर के सम्पर्क में पच्चीस वर्ष, सोहनलाल शास्त्री, भारतीय बौद्ध महासभा, नई दिल्ली।

Copyright © 2017, Dr. Kalpna Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.